हिन्दी - पुष्प

(साउथ एशिया टाइम्स का हिन्दी परिशिष्ट)

वर्ष-३ अङ्क-१० जून, २००७

सम्पादकीय

"पराधीन को सपनेहुँ में सुख नाहीं"

तुलसीदास जी ने ठीक ही लिखा है -"पराधीन को सपनेहुँ में सुख नाहीं", पराधीनता के दौरान, भारतीयों ने सैकड़ों वर्ष तक कष्टदायक, अपमानजनक, अत्याचार और अन्याय की ज़िन्दगी जी। भारतीयों ने भारत, दक्षिणी अफ़्रीका और फ़ीजी में भी विदेशी शासकों के अत्याचार सहे। भारत में, कई विदेशियों (उदाहरण के लिए, मुग़लों, अँग्रेज़ों, फ़्रांसीसियों और पुर्तगालियों) ने राज्य किया। निःसन्देह, विदेशी अधिक शक्तिशाली थे। परन्तु, भारतीयों की पराधीनता का एक और मुख्य कारण था - वह था आपसी फूट । एक राजा, विदेशी सत्ता से हाथ मिला कर दूसरे भारतीय राजा को हराने में अपनी विजय समझता था। विदेशी शासक भी कम चालाक नहीं थे, वे अपनी सहायता का मूल्य बख़ूबी वसूल करना जानते थे।

अँग्रेज़ों ने इसका विशेष लाभ उठाया और धीरे-धीरे, छोटे-बड़े सभी राज्य हड़प लिए और अधिकांश भारत पर अपना राज्य क़ायम कर लिया। जो बचा-खुचा रह गया, उसे फ़्रांसीसियों और पुर्तगालियों ने हथिया लिया। बहुत लम्बे संघर्ष के बाद, भारत को स्वतंत्रता मिली। इस संघर्ष में सभी धर्म और जातियों के भारतीय पुरुषों और स्त्रियों ने एक-दूसरे का साथ दिया और यह सिद्ध कर दिया कि यदि सभी भारतीय मिल कर रहें तो दुनिया की बड़ी से बड़ी ताक़त से मुक़ाबला कर सकते हैं। खेद की बात है कि आर्थिक उन्नति के नये आयामों के छूने के पश्चात भी, आज भारतीयों में एकता का अभाव है। धर्म और जाति के मुद्दों पर आज भी राजनीतिक दल चुनाव लड़ते हैं।

पराधीनता से बचने के लिए, आपसी एकता आवश्यक है।

हिन्दी-पुष्प के इस अङ्क में १८५७ क्रांति की १५०वीं वर्षगांठ पर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रारम्भिक प्रयास बारे में एक लेख है। काव्य-कुंज में कुछ रोचक कविताएँ हैं, 'प्रवासी बुज़ुर्गों ने क्या खोया, क्या पाया' लेख का दूसरा भाग है और साथ में 'अब हँसने की बारी है' तथा सूचनाएँ भी हैं। आशा है आपको यह अङ्क पसंद आएगा। आपके विचारों, सुझावों तथा रचनाओं का हम स्वागत करेंगे।

- दिनेश श्रीवास्तव

लेखकों से निवेदन

१. कृपया अपनी रचनाएँ (कहानियाँ, कविताएँ, लेख, चुटकुले, मनोरंजक अनुभव आदि) निम्नलिखित पते पर भेजें -

डा० दिनेश श्रीवास्तव, १४१ हायट स्ट्रीट. रिचमंड, विक्टोरिया ३१२१

(Dr. Dinesh Srivastava, 141 Highett Street, Richmond, Victoria 3121)

२. हस्तलिखित रचनाएँ स्वीकार की जाएँगी परन्तु इलेक्ट्रानिक रूप से हिन्दी-संस्कृत फ़ांट में रचनाएँ भेजें तो उनका प्रकाशन हमारे लिए अधिक सुविधाजनक होगा।

ई-मेल से रचनाएँ भेजने का पता है-

dsrivastava@optusnet.com.au

३. अपनी रचनाएँ भेजते समय अपनी रचना की एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें।

काव्य-कुंज

मानव हैं हम

- हरिहर झा, मेल्बर्न, विक्टोरिया ऑस्ट्रेलिया

प्यार पाने का हक़,
प्यार देने का हक़ है
मानव हैं हम
ज़िन्दगानी का हक़ है

तू सामन्त, मैं अदना,
किया फ़र्क़ तगड़ा
हुआ ख़ूब इंसान का,
इंसान से झगड़ा
बता भेद कैसा,
तेरे मन में आया
वही गुण-सूत्र
हर इंसान में पाया

कंधे से कंधा
मिलाने का हक़ है
मानव हैं हम
ज़िन्दगानी का हक़ है

शास्त्रों की, धर्मों की
बहुत दी दुहाई
पशुवत बर्ताव किया
लज्जा न आयी
कोई नीचे कुल का,
तू बामन का जाया
बता "और बाँट से"
भला क्यों न आया

झूठी दीवारें
गिराने का हक़ है
मानव हैं हम
ज़िन्दगानी का हक़ है

सदियों से,
पुरुष पूजा गया है
स्वातंत्र्य स्त्री का
कुचला गया है
नया युग, नई रोशनी का
तो हक़ है
पुरुष के बराबर,
अधिकारों का हक़ है
नर-नारी को
अभिव्यक्ति का हक़ है
मानव हैं हम
ज़िन्दगानी का हक़ है

जीवन का हक़ है,
सुरक्षा का हक़ है
आस्थाएँ रखने या
न रखने का हक़ है
पढ़ाई का हक़ है
लिखाई का हक़ है
बीमारी भगाने वाली
दवाओं पर हक़ है

सभी हक़,
हमें जान लेने का हक़ है
मानव हैं हम
ज़िन्दगानी का हक़ है

मूलपंथियों के
दुराग्रह से पाले
हक़ व अधिकार मेरे
तूने तोड़ डाले
लानत है तुम पर
जो तुमसे मैं इतना डरूँ
तुम्हारे हक़ों का
अनादर करूँ
चरमपंथी शोले बुझाने का
हक़ है
मानव हैं हम
ज़िन्दगानी का हक़ है।

माँ से बिछड़ा मगर

-सुभाष शर्मा, मेल्बर्न, विक्टोरिया ऑस्ट्रेलिया

माँ से बिछड़ा मगर
फिर भी रोया नहीं
क्या करें रात भर
फिर भी सोया नहीं

खिलौना-खिलौना
खिलौने की आदत
वह गाड़ी,
ए बंगला पाने की चाहत
वह घर-बार टूटा
तो रोया नहीं
याद टूटी छत की आयी
तो सोया नहीं
माँ से बिछड़ा मगर
फिर भी रोया नहीं

वह टूटी सी मोटर के ही
साथ सोना
नहीं छूने देना
वह अपना खिलौना
वह मोटर जो छूटी
तो रोया नहीं
याद गुड़िया की आयी
तो सोया नहीं
माँ से बिछड़ा मगर
फिर भी रोया नहीं

नई माँ का सोना,
नई माँ का गहना
फटी धोतियों में
वह लिपटी सी बहना
जो बहना से रूठा
तो रोया नहीं
याद राखी की आयी
तो सोया नहीं
माँ से बिछड़ा मगर
फिर भी रोया नहीं

वो खेतों में काँटों के
चुभने की आदत
शहर में ग़लीचों पे
चलने की दावत
जो खेतों में बिखरा
तो रोया नहीं
काँटा फिर जब चुभा
रात सोया नहीं
माँ से बिछड़ा मगर
फिर भी रोया नहीं

वह भी रोता रहा
माँ भी रोती रही
तू सदा ख़ुश रहे
बस यह कहती रही
माँ से बिछड़ा मगर
फिर भी खोया नहीं
याद जब भी सतायी
तो सोया नहीं
माँ से बिछड़ा मगर
फिर भी रोया नहीं

कुछ मुक्तक

-राजेन्द्र चोपडा, मेल्बर्न, विक्टोरिया ऑस्ट्रेलिया

हर राह के
पहले दो पग
होते हैं मुश्किल
और हर मंज़िल के
आख़िरी दो पग
होते हैं मुश्किल
मंगलमय आरम्भ काम है
आधा पूर्ण समान
राजन् - सब बाधाएँ
मिट जाती हैं
विचार हों यदि पवित्र
और कृपा करें भगवान

गुल नहीं गुलाब है ग़र
तो जाने दो
रोशन ही तो करेगा
गुलसिताँ का नाम
पाक़ नूरे नज़र का पयाम
पी लेने दो
ग़र पिलाती है साक़ी
है शिकायत तो कर लेना
मगर मेरे पी लेने के बाद

नुक़्ता-ए-शायरी है हक़ीक़त
जब चाहा लिख डाली
शायरी है दिले क़िताब
जब चाहा पढ़ डाली

मुहब्बत नाम है
बिछड़ी रूहों का मिलना
सम्भाल कर रखना
नज़र ना लगने पाए
वसीयते यार है मुहब्बत
बदनाम न सरे-आम होने पाए

माना मुश्किल है
मुश्किल को
आसाँ कर पाना
मगर नहीं मुमकिन
ज़िन्दगी बने
फूलों का आशियाना
मुमकिन है तसव्वुर से
धुंधलियाँ ख़ुद ही
सफ़ा हो जाएँ
पर नामुमकिन है
बिन मशक़्क़त
ज़िंदगी बने
फूलों का आशियाना

ताल्लुक़ है मह का दिल से
दिल का इश्क़ से
इश्क़ का दर्द से
दर्द का अश्क से
फिर अश्क पिए या मह पिए
मक़सद तो है यारों जीने से

वतन बंदों से बसे
ज़मीं के टुकड़े ही सही
मगर उन से बिछड़ों के
दुख कम तो नहीं
कसक उठती है -
कमी पाते हैं
हम अकेले
हिन्दोस्तानी ही नहीं
मगर कई और भी हैं शायद
जिनको अपने बिछड़े चमन
याद आते हैं

कुरेद कर तराशी है
तस्वीर उनकी
अपने शीशा-ए- दिल में
अक्स अपना ही नज़र आएगा
भूले से ग़र वह कभी देखेंगे
हमारे दिले चिलमन में

प्रवासी बुज़ुर्गों ने क्या खोया, क्या पाया (भाग २)

(पिछले अङ्क में लेखिका ने प्रवासी हुए उन बुज़ुर्गों की मनोदशा का वर्णन किया था जिन्हें अपनी सन्तानों के साथ जीवन के अन्तिम प्रहर व्यतीत करने की लालसा विदेश में खींच लाती है। ऐसे लोगों को विदेश का जीवन बहुत एकाकी व कभी-कभी बहुत उबाऊ भी लगता है। ज़ी-टी०वी० का जो आज उनके मन बहलाव का प्रमुख साधन बन चुका है। लीजिए प्रस्तुत है इस लेख का दूसरा और अन्तिम भाग - सम्पादक)

-शकुंतला अग्रवाल

यों खाने पीने की ऑस्ट्रेलिया में किसी तरह की कमी नहीं है। भारत में न रहते हुए भी विशाल भारत का लघु रूप यहाँ पूर्ण रूप से उपलब्ध है। यह भी नहीं नकारा जा सकता है कि वृद्ध जनों के लिये शारीरिक आराम के साध न उपलब्ध हैं, चिकित्सा सुविधा उत्तम व भरपूर है तथा वृद्धावस्था में भी रोगों से दूर रह सहज जीवन बिता पायें इसका पूरा पूरा ध्यान रखा जाता है, पर भावनात्मक रूप से कुछ ऐसा है जो टूट जाता है। कई बार देखा गया है कि बच्चों ने यहाँ माता पिता को प्रवासी बनाया। भारत से अपनी सारी ज़मीन जायदाद को ठिकाने लगा कर अपनी जमा-पूँजी ले कर बुज़ुर्ग यहाँ आ गये और बाद में बच्चों का व्यवहार कुछ अवज्ञापूर्ण हो उठता है जो उनके लिए संतापदायी बन जाता है और जीवन का अन्तिम प्रहर उनको बच्चों की शर्तों पर जीना होता है। और यदि एकाकी जीवन अपने बल बूते पर ही जीना है तो अपना देश छोड़ा ही क्यों? बस यही कलपना और पछतावा मन में रहता है और मन का दर्द मन ही में घुटता जाता है।

ऐसे एक दम्पति से भी मैं परिचित हूँ जिनके पुत्र ने उन्हें ऑस्ट्रेलिया बुलाया। जब तक बच्चे छोटे थे तो दादा दादी उन को संभालते रहे पर जब वे स्कूल जाने लगे तो तो बुज़ुर्गों की उपस्थिति अनावश्यक सी लगने लगी और छोटी-छोटी भूलों पर उनकी टोका-टाकी अखरने लगी। पुत्र राकेश और पुत्रवधू को लगता था कि उनके स्वतंत्र जीवन में बाधा पड़ रही है। परिणाम यह हुआ कि माता पिता को अलग एक यूनिट में रख दिया गया और कभी कभी सप्ताहान्त में औपचारिकतावश बहू-बेटे उनको देख आते थे। ऐसे एक ही नहीं, अनेकों परिवार होंगे। फिर भी सारांश में कहूँ तो अपने देश की संस्कृति से जो भी सीखा, पढ़ा था उस से कहीं अधिक यहाँ बढ़-चढ़ कर देखने को मिल रहा है। प्रत्येक कार्य सुनियोजित, क्रमबद्ध रीति से व सरलता से होता है। भारतीय जन भी ऑस्ट्रेलिया की सभ्यता और संस्कृति से अछूते नहीं रह पाते हैं, फिर भी यदि कुछ उलझनें हों भी तो थोड़ी समझदारी से उनका हल भी सुलभ हो जाता है।

खोना और पाना तो एक क्रम है। भारत में जो छूटा वह कभी कभी कसकता है पर यहाँ आ कर जो पाया है वह अनुभव और सुविधा दोनों ही दृष्टियों में कहीं अधिक है।

स्वतंत्रता की ओर प्रथम चरण

-सुधा विजय अग्रवाल

१० मई १८५७। मेरठ की छावनी। अँग्रेज़ों का भारतीय सिपाही बेचैन हो उठा है। बर्दाशत की भी कोई हद होती है। गाय या सुअर की चर्बी से सनी कारतूस को मुँह से छीलना - नहीं नहीं। यह सम्भव नहीं है। लेकिन कितनी ज़बरदस्ती है? कल मना करने पर हमारे ८५ साथियों को १० साल की कैद, हथकड़ी बेड़ियों के साथ। नहीं, अब और नहीं। आग भड़क उठी। साथियों को छुड़ाने में गोरे अफ़सर मारे गये और विद्रोह आरम्भ हो गया। चल पड़े सिपाही आज़ादी की राह पर, देश के प्रतीक - दिल्ली की ओर। यों शुरू हुआ भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम।
गोरों के ख़िलाफ़ पहली बार सफ़लतापूर्वक हथियार उठे। बरसों के जुल्म, आर्थिक लूट, ग़ुलामी के कारण अपमान, धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं के मज़ाक व हस्तक्षेप से उत्पन्न क्षोभ ने सोई हुई स्वतन्त्र होने की लालसा को जगाया। अगले ही दिन दिल्ली की सल्तनत एक बार फिर मुग़ल बादशाह, बहादुर शाह ज़फ़र के हाथ में थी। सौ साल पहले उनके पूर्वज अँग्रेज़ों के सामने घुटने टेक चुके थे और अब वे अंग्रेजों की दी हुई पेंशन रूपी भीख पर आश्रित थे। यद्यपि वे इस समय कमज़ोर, थके हुए ८० वर्ष के वृद्ध थे तथापि उनके मन में भी अँग्रेज़ों से स्वतन्त्रता पाने की आग दहक रही थी।

जल्द ही उत्तर भारत के अन्य मुख्य स्थानों के सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, झांसी, बरेली, आगरा युद्ध के केन्द्र बन गये। नाना साहिब, तॉतिया तोपे, बख्त खान, रानी लक्ष्मी बाई, बेग़म हज़रत महल, कुँवर सिंह, राव तुला राम जैसे अनेकों योद्धाओं ने इस आंदोलन को आगे बढ़ाया परन्तु यह युद्ध अधिक दिन चल नहीं सका। जुलाई में कानपुर वापस अँग्रेज़ों के हाथ में चला गया और सितम्बर में दिल्ली। धीरे-धीरे अधिकतर नेता शहीद हो गये या गोरी फ़ौज के बेहतर हथियार के सामने टिक न पाये। अन्तत: १ वर्ष १ महीने और १० दिन बाद सब समाप्त हो गया। न रही ईस्ट इंडिया कम्पनी और न रहा मुगल साम्राज्य। और टल गया आजादी का सपना साकार होने का दिवस, ९० वर्षों के लिए।

यह था भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का अति सूक्ष्म विवरण। बचपन से इसका नाम ग़दर या 'सिपोय म्यूटनी' सुनते आये थे पर वह तो था विजेताओं की भाषा में लिखा इतिहास। क्या यह सही माने में ग़दर था? अगर नहीं तो इसे स्कूलों में ग़दर के नाम से क्यों पढ़ाया जाता रहा है? मार्क्स/ एंजिल्स ने तो १८५७ में ही न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून में इसे स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा दे दी थी।

आज उन शहीदों को श्रद्धांजलि देने का समय है पर आज इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि हमारी इतनी बड़ी सिपाहियों की सेना, जनता का समर्थन प्राप्त होने पर भी, मुट्ठी भर गोरी फ़ौज से क्यों हार गई! ग़ौर से देखने पर यह बात उभर कर सामने आती है कि इस संग्राम में हमारे अपनों ने हमारा साथ नहीं दिया। राजस्थान, पंजाब, ग्वालियर और पूरा दक्षिण भारत या तो चुप था या फिर अँग्रेज़ों के साथ। कोई भी शक्तिशाली राज्य इस आन्दोलन के साथ नहीं था। वे अपने स्वार्थ के कारण आगे नहीं आना चाहते थे। यही अँग्रेज़ों के जीतने का मूल कारण बना। इसका सबूत है लॉर्ड कार्नवालिस का बाद में लिखना कि यदि सिंधिया हमारे साथ न होते तो ईश्वर ही हमारा मालिक था।

दूसरा, जो लड़ाई में भाग ले रहे थे वे भी केवल अपने-अपने राज्यों की तरफ़ से, किसी पिछली नाइंसाफ़ी का बदला लेने के लिए आगे आए थे। उनके लिए उनका राज्य ही अन्तिम सीमा थी। भारतवर्ष या हिन्दुस्तान नाम की किसी चीज का उनके दिमाग़ में कोई अस्तित्व ही नहीं था। "देश" के हित की भावना का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। कितने दुख का विषय है यह।

१८५८ में आंदोलन का दमन होने के बाद सीधे अँग्रेज़ी सरकार ने "ब्रिटिश इंडिया" की बागडोर अपने हाथ में ले ली और फिर १८७७ में रानी विक्टोरिया को भारत की महारानी "एम्प्रेस आफ इंडिया" का ख़िताब प्रदान किया। इसी ब्रिटिश इंडिया की हदों के भीतर हमारे आज के भारतवर्ष का नक्शा समाया है जिसे लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल ने १९४७-४८ में एक सूत्र में बांधा। यहाँ से ही उभर कर आज का भारत हमारे सामने, कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से बंगाल तक फैले हुए एक महान राष्ट्र के रूप में है।
आज हम सभी नागरिक देश को देश की पहचान देने के लिए १८५७ के संग्राम के आभारी हैं और इसमें शहीद हुए वीरों को श्रद्धांजलि देते हैं। भारतवर्ष में यह दिन, अत्याधिक राजनैतिक हलचल होने के उपरांत भी, एक पर्व के रूप में मनाया जा रहा है। इसके लिए सरकार ने १५० करोड़ रुपये की धनराशि विविध कार्यक्रमों के लिए दी है। यहीं नहीं, बल्कि लन्दन में नेशनल आर्मी म्यूज़ियम ने एक ख़ास प्रदर्शनी का आयोजन किया है। मेरठ से १०,००० लोग दिल्ली की ओर चल कर ११ मई को लाल किले पर पहुँचे जहाँ एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। यह समारोह आगामी १२ महीनों तक चलेगा।

इस संदर्भ में भारत के इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी उल्लेखनीय है जिसकी २५०वीं वर्षगांठ इसी माह (जून) में पड़ती है। यह हमारे इतिहास का सबसे शर्मनाक हादसा है जिसे भुलाया नहीं जा सकता। **२३ जून १७५७** को प्लासी के युद्ध के बाद भारत का ग़ुलामी का सफ़र असल रूप से आरम्भ होता है।

इस चन्द घंटे के युद्ध की कहानी भी संक्षिप्त सी ही है। १७५६ में सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब नियुक्त हुआ। उसने अँग्रेज़ों को ग़ैर क़ानूनी तरह से फैलते हुए देखा। पहले उसने कलकत्ता और फिर फ़ोर्ट विलियम को अँग्रेज़ों से छुड़ाया। वहीं पर "ब्लैक होल" की घटना हुई कहा जाता है कि कुछ अँग्रेज़ एक छोटे से कमरे में रात भर बन्द रहे जिससे कइयों की दम घुटने से मौत हो गई यह समाचार मिलते ही, क्लाईव, जो कुछ ही दिन पहले इंगलैंड से मद्रास पहुँचा था, समुद्री रास्ते से पूरी सेना सहित बंगाल की ओर चल पड़ा। यहाँ उसे जल्दी ही नवाब की गद्दी के लिए लालायित सेनापति मीर ज़फ़र और शहर का बड़ा सेठ ओमी चन्द का साथ मिल गया। नवाब की ५०,००० सिपाहियों और २४ तोपों की सेना को क्लाइव के ३,००० आदमी और ८ तोपों ने हरा दिया। वास्तव में, यह युद्ध तो हुआ ही नहीं। मीर ज़फ़र ने ग़द्दारी की मिसाल कायम की और अधिकतर सेना, बिना लड़े ही मैदान से भाग खड़ी हुई। क्लाईव की जीत हुई और भारत में अंग्रेजों के शासन का आगमन हुआ। 'डिस्कवरी आफ इंडिया' में श्री जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि सच में क्लाइव ने यह युद्ध सेना से नहीं बल्कि ग़द्दारी और धोखे से जीता था। उस समय का अधिकतर इतिहास, विजेता की भाषा में लिखा गया है जो कि इस युद्ध का बिल्कुल उलटा ही विवरण देता है पर जो भी हो, यह कटु सत्य है कि एक बार फिर जयचन्द की नीति का सहारा ले कर मीर ज़फ़र और ओमी चन्द जैसे लोगों ने भारत की स्वतन्त्रता को दुश्मन के हाथों बेच दिया!
इस दिवस पर हम सभी भारतीय नागरिकों को यह शपथ लेनी चाहिए कि देश में इस तरह के नासूर को आगे कभी नहीं पनपने देंगे।

अब हँसने की बारी है

लाटरी

सुरेन्दर सिंह की १५ लाख की लाटरी निकल गयी तो वह अपना टिकट ले कर लाटरी की दुकान पर गये जहाँ से उन्होंने लाटरी का टिकट ख़रीदा था। दुकानदार ने नम्बर मिलाए और कहा- वाक़ई आप तो १५ लाख रुपए जीत गये। ऐसा कीजिए, ५ लाख रुपये नक़द ले लीजिए। बाक़ी रुपये, १ लाख प्रति सप्ताह के हिसाब से अगले दस सप्ताहों में ले लीजिएगा। सुरेन्दर सिंह ने कहा कि मुझे पूरे १५ लाख रुपये एक मुश्त में दो वरना मुझे मेरे ५ रुपये वापस कर दो जिनसे मैंने लाटरी का टिकट ख़रीदा था।

सूचनाएँ

१. संगीत-संध्या (शनिवार, २ जून) और **साहित्य-संध्या** (शनिवार, ७ जुलाई)
स्थान - वेवर्ली मेडोज़ प्राइमरी स्कूल, ह्वीलर्स हिल, मेलबर्न
(मेल्वे संदर्भ ७१ जी ११)
समय - रात के ८.०० बजे से १० बजे तक। प्रवेश नि:शुल्क है।
अधिक जानकारी के लिए राधेश्याम गुप्त जी को (०३) ९९४६ २५९५ अथवा (०४०२)०७४२०८ पर फ़ोन कीजिए।

२. ऑस्ट्रेलिया इण्डिया सोसायटी आफ़ विक्टोरिया द्वारा आयोजित '**महफ़िल-नाइट**' (**रविवार, २३ जून**)
स्थान - नार्थकोट कम्यूनिटी सेंटर, १८ बेंट स्ट्रीट, नार्थकोट
समय - दोपहर ४ बजे से शाम ६ बजे तक। प्रवेश नि:शुल्क है।

३. अंतर्राष्ट्रीय ८वीं हिन्दी विश्व महासभा (१३ जुलाई से १५ जुलाई तक)
स्थान - न्यूयार्क, अमेरिका
अधिक जानकारी के लिए निम्नलिखित वेबसाइट देखिए-
www.vishwahindi.org

४. रामकृष्ण मिशन के स्वामी श्रद्धानंद जी का **श्रीमद्भागवत गीता के चौथे अध्याय पर प्रवचन**
स्थान - कमरा नम्बर ५.१.४, बिल्डिंग ५, होल्मसग्लेन टेफ़, चैड्स्टन कैम्पस, बेट्स्फ़ोर्ड रोड, चैड्स्टन (मेल्वे, ६९ ई-१)
तिथि व समय - ब्रहस्पतिवार, १४ जून (७.४५ बजे शाम से ९ बजे रात तक)
शुक्रवार, १५ जून (७.४५ बजे शाम से ९ बजे रात तक)
शनिवार, १६ जून (दोपहर ३ बजे से ४.१५ बजे तक)
अधिक जानकारी के लिए, मोहन को (०३) ९८०१६७४ पर फ़ोन कीजिए।